स्याद्वाद एवं सप्तभंगी नय

स्याद्वाद जैन ज्ञान मीमांसा का एक अत्यन्त प्रसिद्ध सिद्धांत है जो उसके अनेकान्तवादी सिद्धांत पर आधारित है। स्यादवाद एक ऐसा विलक्षण सिद्धांत है जो 'निर्णय' या 'परामर्श' सम्बन्धी मत को प्रकट करता है। इसके अनुसार हमारा समस्त ज्ञान सापेक्षता सत्य होता है।

स्यात् शब्द का अर्थ → स्यादवाद में 'स्यात्' शब्द को लेकर विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कोई इसे 'संशयवाद' तो कोई इसे 'शायद' या 'संभवतः' आदि से लेते हैं। किंतु जैन स्यादवाद के संदर्भ में यह पूर्णतः गलत अर्थ है।

अतः जैन दर्शन के अनुसार 'स्यात्' शब्द का अर्थ 'किसी अपेक्षा से' या 'किसी दृष्टि से' है। उसे एक शब्द में 'कथंचित' कहा जा सकता है। किसी भी वाक्य में 'स्यात' शब्द जोड़ने का अर्थ होता है कि वह किसी विशेष दृष्टि अथवा अपेक्षा से सत्य है।

स्यादवाद सापेक्षवाद है → वस्तुतः स्यादवाद एक प्रकार का सापेक्षवाद ही है। किसी भी नय से 'स्यात्' जोड़कर हम यह निश्चित कर देते हैं कि किसी वस्तु के सम्बन्ध में उस वाक्य की सत्यता किसी विशेष प्रसंग में ही सीमित है। किसी अन्य प्रसंग में वह मिथ्या अथवा कुछ और भी हो सकती है।
जैसे हाथी के उदाहरण में एक प्रसंग में हाथी का दीवाल के समान होना सत्य है, किंतु दूसरे प्रसंग में वह खम्भे के समान भी हो सकता है। अतः अपने नय (दृष्टिकोण) को प्रमाणिक बनाने के लिए हाथी के पेट को छूने वाले अंधे को कहना चाहिए कि स्यात् हाथी दीवाल के समान है। अर्थात् एक दृष्टि से हाथी दीवाल के समान है।

इस प्रकार से स्यादवाद ज्ञान की सापेक्षता का सिद्धांत है, जिसके अनुसार कोई भी कथन या दृष्टिकोण किसी विशेष काल, स्थान, गुण एवं दृष्टिकोण पर आधारित है तथा उसी दृष्टिकोण से वह सत्य भी है। अतः स्पष्ट है कि यह

(स्याद) शब्द ज्ञान की आंशिकता एवं सापेक्षता को इंगित करता है। क्योंकि कोई भी निर्णय पूर्णरूपेण सत्य नहीं कहा जा सकता। जैन दर्शन के अनुसार, प्रत्येक वस्तु के अनंत गुण होते हैं। इन सभी गुणों को जानना सांसारिक जीवों के लिए संभव नहीं है केवल मुक्त जीव (केवली) ही किसी वस्तु के सभी गुणों को जान सकता है। यही कारण है कि साधारण व्यक्ति के निर्णय आंशिक रूप से ही सत्य होते हैं।

जैन दर्शन का यह स्यादवाद 'वस्तुवादी सापेक्षवाद' है न कि प्रत्ययवादी सापेक्षवाद। जैनियों का मानना है कि वस्तु की सत्ता ज्ञाता से पृथक एवं स्वतंत्र है। साथ ही वस्तुओं के गुण मन पर आश्रित न होकर वस्तुनिष्ठ हैं। गुण मानसिक न होकर वास्तविक है, यथार्थ है। ये गुण वस्तुओं पर मन या आत्मा (जीव) द्वारा आरोपित नहीं हैं। हम केवल विचार या परामर्श के द्वारा वस्तु के वास्तविक धर्मों को जान सकते हैं। इसलिए जैन दार्शनिक यह मानते हैं कि कोई विचार तभी सत्य होगा, जब वह बाह्य वस्तु के धर्म को व्यक्त करे।

सप्तभंगी नय ⇒ सप्तभंगी नय स्यादवाद का ही विस्तृत रूप है, अतः इसे स्यादवाद का पूरक सिद्धांत भी कहा जा सकता है। नय (परामर्श = Judgement) किसी वस्तु के संबंध में सापेक्ष अथवा आंशिक कथन है। चूँकि धर्म अनंत है, अतः नय भी अनंत होने चाहिए। किंतु इन अनन्त नयों की अलग-अलग अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है। इसलिए जैन दार्शनिकों ने सात प्रकार से इन अनंत धर्मों की अभिव्यक्ति को संभव बनाया है। इसी वजह से इसे 'सप्तभंगी' नय कहते हैं। प्रत्येक नय के आरम्भ में स्यात शब्द जोड़ दिया जाता है ताकि नय प्रमाणिक बन सके।

सप्तभंगी नय में निम्नलिखित सात नय इस प्रकार से हैं—

(1). स्यात् आस्ति - अर्थात् किसी अपेक्षा से द्रव्य है। यह भावात्मक नयों का सामान्य रूप है। उदाहरण - स्यात् पुस्तक पीली है। इसका अर्थ यह है कि पुस्तक किसी विशेष स्थान, समय एवं परिस्थिति में पीली है।

(2). स्यात् नास्ति → अर्थात् किसी अपेक्षा से पुस्तक पीली नहीं है। यह साधारण निषेधात्मक वाक्य है।

(3). स्यात् आस्ति च नास्ति च → अर्थात् किसी अपेक्षा से पुस्तक पीली भी है और नहीं भी है।

(4). स्यात् अव्यक्तव्यम् → अर्थात् किसी अपेक्षा से पुस्तक पीली है जिसके बारे में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता है अर्थात् वह अव्यक्त है।

(5). स्यात् आस्ति च अव्यक्तव्यम् च → अर्थात् किसी अपेक्षा से पुस्तक पीली है, किंतु ऐसा है जिसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता है। यह नय प्रथम एवं चतुर्थ नय के क्रमिक रूप से मिलाने पर बनता है।

(6). स्यात् नास्ति च अव्यक्तव्यम् च → अर्थात् किसी अपेक्षा से पुस्तक पीली नहीं है, किंतु यह ऐसा है जिसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता है।

(7). स्यात् आस्ति च नास्ति च अव्यक्तव्यम् च → अर्थात् किसी अपेक्षा से पुस्तक पीली है भी, नहीं भी है और वह ऐसा है जिसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि इनमें से प्रथम चार नय अधिक महत्वपूर्ण हैं। शेष तीन नय चौथे नय के साथ पहले, दूसरे और तीसरे नय को जोड़ने से बने हैं। इस प्रकार पहले और चौथे को जोड़ने से पाँचवा, दूसरे और चौथे को जोड़ने से छठवां तथा तीसरे और चौथे को जोड़ने से सातवां नय बना है।

स्याद्वाद की आलोचना → इसकी निम्नवत् आलोचना की गई है -

(a). जैन दार्शनिक 'स्यात' शब्द पर अधिक जोर देते हैं। वे अपने प्रत्येक नय में 'स्यात' शब्द को जोड़ते हैं। इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि वे सप्तभंगी नय को भी आंशिक रूप से ही सत्य मानते हैं। इस प्रकार स्याद्वाद स्वयं भी आंशिक रूप से ही सत्य कहा जा सकता है।

(b). यदि स्याद्वाद का कथन सत्य मान लिया जाए कि नयों में आंशिक सत्यता रहती है, न कि पूर्ण सत्यता, तो जैनों के ज्ञान-मीमांसा, तत्वमीमांसा एवं आचार मीमांसा से सम्बद्ध निर्णय भी आंशिक रूप से ही सत्य कहे जा सकते हैं। ऐसी स्थिति में जैन दर्शन का महत्व ही समाप्त हो जाता है।

(c). बौद्ध और वेदान्ती स्याद्वाद को विरोधीपूर्ण सिद्धांत बताते हैं। यहाँ परस्परविरोधी गुणों को एक ही साथ रखने का प्रयास किया गया है। शंकर तो स्याद्वाद को 'पागलों का प्रलापमात्र' कहा है।

(d). वेदांतीयों के अनुसार स्याद्वाद स्वयं खण्डित हो जाता है, क्योंकि यह आत्मघातक सिद्धांत है।

(e). स्याद्वाद सभी प्रकार के ज्ञान को सापेक्ष घोषित करता है किंतु हम जानते हैं कि सभी प्रकार के सापेक्ष ज्ञान किसी-न-किसी निरपेक्ष ज्ञान (absolute Knowledge) पर निर्भर होता है। निरपेक्ष ज्ञान की उपेक्षा करके स्याद्वाद के सातों नयों में परस्पर समन्वय नहीं किया जा सकता।

(f). स्याद्वाद में सात नयों का रखने का कोई युक्तियुक्त आधार नहीं दीख पड़ता। प्रथम चार नय ही मौलिक हैं और अंतिम तीन नय उन्हीं की पुनरावृत्ति मात्र हैं। इसलिए नयों की संख्या सात रखने का कोई औचित्य नहीं है।

(g). स्याद्वाद और 'केवल ज्ञान' परस्पर विरुद्ध है।

स्याद्वाद का महत्व → स्याद्वाद का महत्व भी अनेकान्तवाद के समान ही हठवादिता का त्याग कर उदार बनने में है। जैन-दर्शन अपने 'अहिंसा' के सिद्धांत के लिए प्रसिद्ध है। उनका स्याद्वाद एक प्रकार से मानस-अहिंसा है, क्योंकि स्याद्वाद अपनाकर वे दूसरे के विचारों की सत्यता को भी स्वीकार करते हैं। इस प्रकार से अन्य दर्शन जहाँ अपने ही दर्शन को सत्य घोषित कर दूसरों के विचारों की असत्यता के प्रतिपादन में लगे रहते हैं, वहाँ जैन-दर्शन दूसरे दर्शनों के विचारों को भी महत्व देता है। इस तरह स्याद्-वाद जैन-दर्शन का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है।